वियोग-कथा

लेखक—

साहित्यरत्न, प० जगन्नाथ मिश्र "कमल"

प्रकाशक—

कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण,—

प० राधेश्याम कविरत्न,

अध्यक्ष,—

श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय,

बरेली ।

प्रथमबार २०००] सन् १९२९ [मूल्य चार आने

वियोग-कथा

वियोग-कथा

लेखक—

साहित्यरत्न, प० जगन्नाथ मिश्र "कमल"

प्रकाशक—

कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण,—

प० राधेश्याम कविरत्न,

अध्यक्ष,—

श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय,

बरेली।

प्रथमबार २०००]   सन् १९२९   [मूल्य चार आने

प्रकाशक-

प० राधेश्याम कथावाचक

अध्यक्ष -

श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय,

बरेली ।
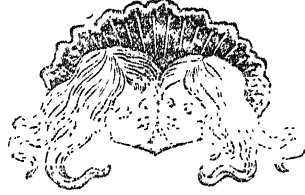
मुद्रक--

प० रामनारायण पाठक,

श्रीराधेश्याम-प्रेस,

बरेली ।

भूमिका

वियोग-कथा एक साधारण खंड-काव्य है। इसकी रचना बहुत थोड़े समय में की गई है। इस कारण इसके पद्यों में किसी नये भाव का समावेश नहीं हो सका है। मैं नहीं कह सकता कि पुस्तक प्रतिष्ठित हिन्दी-मर्मज्ञ विद्वानों को पसन्द होगी या नहीं। जो हो, मैं हिन्दी-माता से प्रेम रखता हूं, और यह रचना उसी प्रेम का सच्चा रूप है। मैं निःसंकोच अपनी कृति को हिन्दी-प्रेमियों के सम्मुख रखता हूं, और आशा करता हूं कि साहित्यानुरागी इसे अपनाकर मुझे दूसरी कृति अपनी सेवा में उपस्थित करने का अवसर देंगे।

इस पुस्तक की रचना का प्लाट बिहार प्रान्त के स्वनाम धन्य विद्वान् स्वर्गीय कवि श्री प० विजयानन्द त्रिपाठी ने बतलाया था। किन्तु शोक है कि पुस्तक के तैयार होने से पहले ही उक्त श्रीमान् गोलोक-वासी होगये।

पुस्तक लिखते समय कहीं २ मुझे हिन्दी के सुकवि प० केदारनाथ मिश्र "प्रभात" से सहायता मिली है; इसलिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं। लिख लेने पर मैंने इस पुस्तक को प्रोफ़ेसर जनार्दन मिश्र एम० ए० को दिखलाया था। उन्होंने इस रचना की बड़ी प्रशंसा की और मुझे हृदय से उत्साहित किया। इसके लिये मैं उन्हें भी सहर्ष धन्यवाद देता हूं।

पटना
२७–४ २६ } "कमल"
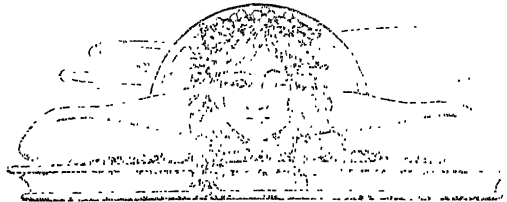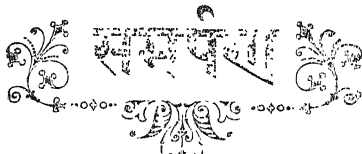
जिसके कृपा कटाक्ष मात्र से,
जग-जड़त्व का होता नाश।
मिलता जिससे वर विद्या का,
उज्ज्वल निर्मल ज्ञान प्रकाश॥
जिसकी पावन पुण्य ज्योति से,
सकल भुवन आलोकित है।
यह 'वियोग की कथा' उसी को,
सादर आज समर्पित है॥

कविरत्न "प्रभात"

ॐ

वियोग-कथा

विरहिणी से—

(१)

किस चिन्ता में लीन खड़ी हो,
 नदी तीर हे सजनि ! उदास ?
आँसू ढुलक रहे आँचल पर,
 लेती हो क्षण क्षण उच्छ्वास ?

(२)

सुन्दर केश-पाश बिखरे हैं,
 मुख-मयंक मृदु अधर मलीन ।
चन्द्रवदनि ! उत्सुक हो-होकर,
 खोज रहे किसको हर-दीन ?

(३)

उठ-उठ कर मृदुभाव-भवन से,
किसका निर्म्मल प्रेम अपार ?
तेरे गोल कपोलों पर खिल
कर जाता है चकित विहार ?

(४)

किसकी सुध में भूल गई हो,
अपनी देह-दशा का ध्यान ?
अन्तर्पट पर किस अतीत का,
चित्र खींचती हो छविमान ?

(५)

किसके स्वागत को पल-पल ये,
तड़प रहे हैं प्राण अधीर ?
किसकी आतुर दुख-गाथा पर
ढुलकाते दृग-पल्लव नीर ?

(६)

खींच रहा तेरे मनको, किस
मिलन-मंत्र का इङ्गित मौन ?
बढ़ा रही उत्सुकता तेरी,
सजनि ! प्रिया-सी है वह कौन ?

(७)

डूब रहे हैं ज्यों-ज्यों दिनपति,
होता जाता दिन अवसान।
विहग-दलों का बन्द हुआ-
जाता है मंजु मनोहर गान।

(८)

विश्व-भवन से धीरे-धीरे,
लुप्त हो चला दीप्त-प्रकाश।
सजनि! किंतु तुम खड़ी अकेली
ताक रही हो क्यों आकाश ?

(९)

क्या प्रियतम की राह देखती
हो, मन में भर अविचल भाव ?
सोच रही हो, आयेगी
प्रियतम की इसी नदी में नाव ?

(१०)

या निष्ठुर नल-सा कोई नर,
चला गया है तुमको त्याग ?

या ईश्वर प्रति अन्तस्तल में,
जाग उठा है नव अनुराग ?

(११)

नहीं तपस्या-योग्य तुम्हारा
है यह कोमल तनु-सुकुमार !
किस कारण इस निर्जन वनमें
आई हो तुम तज घर बार ?

(१२)

कलित गेरुआ वस्त्र, भस्म से,
भूषित नहीं तुम्हारा अंग।
योगिन कैसे समझे कोई,
छाया तन पर यौवन-रंग ॥

(१३)

छीन लिया है किस बल ने,
तेरे जीवन का सुख-सामान ?
किसके लिये विषादित बनकर,
भूल गई हो सारा ज्ञान ?

(१४)

क्या तुझ से अब प्रियतम तेरे,
रूठ गये हैं, री अनजान ?

या, हो गई विफल है सारी,
　　　　मन की आशा मंजु महान ?

(१५)

सुख-प्रमोद क्यों भूल गया, तव
　　　　हृदय बन गया शून्य महान ?
श्याम-विरह में धधक रहे हैं,
　　　　क्या तेरे जीवन–मन–प्रान ?

(१६)

अयि चिन्तिते ! कौन तुम्हारे,
　　　　मन का सुनता है उन्माद ?
श्याम नहीं हैं, जग में उनकी
　　　　केवल एक मात्र है याद ।

(१७)

गोपी, ग्वाल-बाल आदिक नित
　　　　सहते दारुण दुख मन मार ।
किंतु न कहीं सुनाई पड़ती,
　　　　केशव की वंशी-स्वर-धार ॥

(१८)

नहीं पुण्य वृन्दावन में अब
　　　　रचते कृष्ण रास अभिराम ।

या, यमुना-तट मुदित मुग्ध-मन,

करते क्रीड़ा लोल-ललाम ॥

(१६)

तरनि-तनूजा-तीर वही है,

किंतु नहीं द्वापर की बात ।

चहल-पहल सारे भारत का

लुप्त हुआ क्यों ? हा अज्ञात ॥
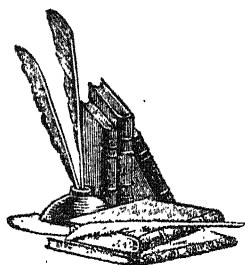
विरहिणी की उक्ति—

(१)

कष्ट अनेकों भोग रही हूँ,
आठों याम प्रणय—धन हीन
तड़प रहा है विरह-दग्ध, हत-
चेतन—चित चिन्ता में लीन

(२)

नहीं मुझे आकर कह जाता,
कोई प्रियतम का सन्देश।
रोम-रोम से निकल रही ध्वनि,
हाय——कहां हो, हे प्राणेश ?

(३)

बैठ प्रतीक्षा-पथ पर उत्सुक;
बाट जोहती हूं दिन—रात।
गिरा रहे प्रिय-दर्शन-वंचित,
नयन अश्रु—मुक्ता अवदात

(४)

लो—हे वन के हरिण सलोने,
लो—यह अश्रु-लड़ोका हार।
जहां मिलें प्रियतम दे देना,
कह देना उरका उद्गार॥

(५)

भाद्र—मास की कुहू—निशा है।
जलद्—जाल—पूरित है व्योम।
विस्तृत-विश्व विराव-हीन है,
घिरा घोर चहुँदिशि तम-तोम॥

(६)

मेघ—ओट में छिपे हुए हैं,
कलित कलाधर कुमुदिनि-कान्त
अन्धकार में भटक रहे हैं,
पथ-परिभ्रष्ट-पथिक-परिश्रान्त।

(७)

तौ भी मार्ग न भूल इधर,
आ जाते मेरे प्राणाधार।
जिन्हें देख मैं नेत्र जुड़ाती,
पाती निर्म्मल शान्ति अपार॥

(८)

अब तक मेरे मनकी आशा,
हुई न कोई भी स्वीकार।
मुझ अभागिनी को जगमें क्यों,
जन्म दिया तूने कर्त्तार?

(९)

कैसे निर्म्मम नाथ बने हैं,
करते तनिक न मेरी याद।
कोई बात न सुनता, किससे,
कहलाऊँ मन का उन्माद?

(१०)

हे नभचर! तुम नील गगन में,
उड़ते हो नित चारों ओर।
कहीं देखते हो तो कहदो,
कहाँ हमारे हैं चित चोर?

(११)

चातक! प्यासे हो तो लो यह,
अमल-धवल शीतल दृग-नीर
किन्तु पिऊ की रटन लगाकर,
करो न मन को व्यर्थ अधीर॥

(१२)

मैं तो विरह-वज्र-हत निशिदिन,
पाता कठिन मानसिक क्लेश ।
अब [illegible] याद दिला तुम,
क्यों करते हो दुखित विशेष ?

(१३)

चारु-चन्द्र हे ! शर्वरीश हे !
सुधा-सिक्त-शशि शोभाधाम !
मुझ दुखिनोका सुनो ध्यान दे,
करुणालाप रुदन निष्काम ॥

(१४)

जिसके लिये हृदय रोता है,
वह है कहाँ हृदय की आस ?
जिसके लिये म्लान जीवन है,
वह है कहाँ मधुर उल्लास ?

(१५)

जिसके लिये चित्त चिन्तित है,
वह है कहां चित्त की चाह ?
जिसके लिये विश्व सूना है,
वह है कहाँ अतुल उत्साह ?

(१६)

कहो, कहो, क्यों चुप हो? बोलो,

पूछ रही तुम से सप्रेम ।

कहीं हमारे प्रियतम हों,

पर हैं तो वे सकुशल सक्षेम ?

(१७)

गरज रहे हो क्यों ? हे बादल !

क्या होगो दिग्वसना पात ?

अच्छा होगा मर जाऊंगी,

झट पाकर उसका आघात ॥

(१८)

अरी मृत्यु! क्यों पास न आती ?

कर देती जीवन अवसान ।

आज सदा के लिये मुक्त हो,

जाते मेरे व्याकुल प्रान ॥

(१९)

मन्द वायु संग लगीं बरसने,

रिमझिम बूंदें-वारि ललाम ।

कहीं भींजते होंगे तरु-तल,

मुझ सीता के जीवन-राम ॥

(२०)

राही राह न चलते हैं अब,
किससे पूछूं प्रिय का हाल ?
पाती-प्रेम पठाऊं लिखकर,
विरह-यन्त्रणा जटिल कराल ॥

(२१)

योगिन बनकर फिरी खोजती,
मैं कल-कालिंदी के कूल ।
गंगा-जल भर नयन-पात्र में,
लिये करों में जीवन-फूल ॥

(२२)

नन्दन-वन, ब्रज-धाम, ग्राम में,
थकी निढाल पुकार-पुकार ।
पड़ा मुझे सर्वत्र दिखाई,
निबिड़ निराशा का संसार ॥

(२३)

अब क्या ! अब तो जीवन-नाटक
का है, अन्तिम दृश्य समीप !
लगी साध है, एक बार यदि
दर्शन देते जीवन-धीर ॥

(२४)

तो भी जाते समय-विश्व से,

शान्ति परम पा जाते प्रान ।

समझ धन्य अपनेको सब विधि,

हो जाते कृतकृत्य महान ॥
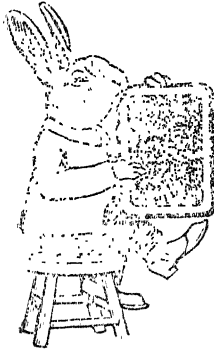
सान्त्वना—

(१)

बढ़ने दे—हां बढ़ने दे,
मन में दर्शन की अभिलाषा ।
अवसर पाकर पूरी होगी,
मधुर मिलन की शुभ आशा ॥

(२)

किस अथाह में डूब रही हो ?
ठहरो—सुधि मत बिसराओ ।
आओ, यमुना-तट पर बैठो,
कुछ गाओ, मन बहलाओ ॥

(३)

भोज-पत्र लो इस पर अपनी,
विरह-वेदना लिख डालो ।
यमुना की शुचि-मन्द धार में,
आँसू-बूंद बहा डालो ॥

(४)

स्वागत को तैयार रहो,
मत भ्रममें मन मिल जाने दो ॥

नेत्र बिछाये रहो मार्ग में,
दर्शन के दिन आने दो॥

(५)

प्रेम-व्याधिमें व्यथित व्यग्र हो,
हृदय सदैव तड़पने दो।
मिले न दर्शन-स्वाति-बूंद तो,
चातक-प्राण तरसने दो॥

(६)

विरह-वह्निमें जीवन-लतिका,
सजनि ! मौन हो, जलने दो।
कभी न अपने शोक भरे,
छन्दों में किन्तु उलझने दो॥

(७)

बहे चलो यदि बहा रही है,
चिन्ता की व्याकुल धारा।
प्रेम-हाट में लुट जाने दो,
तन-मन-धन-जोवन सारा॥

(८)

जितनी आँसू-बूंद गिरेंगी,
उतना चित निर्मल होगा।

धैर्य्य धरो, यह करुणा-क्रन्दन,
कभी नहीं निष्फल होगा ॥

(९)

जबतक विरह सताता मन को,
मिलती शान्ति कहाँ ? कैसी ?
"डूब मरूँ या जीवन तज दूं,
होती चाह सदा ऐसी" ॥

(१०)

पर न लाभ होता है कोई,
धैर्य्य हृदय का खोने से ।
क्लेश-अवधि क्या घट सकती है,
चिन्ताकुल अति होने से ?

(११)

याद करो मिथिलेश नन्दिनी
को, वियोग-विपदा भारी ।
जिसकी करुणा-कथा सुन अब भी,
रो देते हैं नर-नारी ॥

(१२)

या, दमयन्ती को वन में जब,
नल ने था परित्याग किया ।

कैसी उसकी दशा हुई थी?
पर उसने भी सहन किया ॥

(१३)

जग में जीवन पाकर सब को,
सुख-दुख सहना होता है।
हँसता है जो आज वही कल,
विधि-विपाक से रोता है ॥

(१४)

अरे विश्व तो मनुज-योनि की
कठिन परीक्षा का स्थल है।
सुख-दुख दोनों बनें परीक्षक,
होतो आंच सदाचल है ॥

(१५)

जिस प्रकार कंटक-पूरित,
होती गुलाब की डाली है।
उसी भाँति मानव-पथ में यह,
विरह-क्लेश दुखशाली है ॥

(१६)

विरह-मर्म को वही समझते,
जो विरही कहलाते हैं

प्रेम-पन्थ है कितना दुस्तर,
प्रेमी ही बतलाते हैं ॥

(१७)

सुनो, उधर-कल-कल-ध्वनि में कुछ,
यमुना भी दुख गाती है।
क्या है उसकी व्यथा ? न जाने
किसको उसे सुनाती है ॥

(१८)

विदित होरहा, भूले मोहन
को, निज याद दिलाती है।
कहकर अपनी मर्म-वेदना,
विकल-विलोल बुलाती है ॥

(१९)

उस-कदंब से, ग्वाल-बाल से
पूछो ब्रज है कितनी दूर।
जहाँ मोहिनी-मंजु-मूर्ति की,
छिटक रही छवि-छटा विसूर ॥

(२०)

निज-निकेतन से निकल यहाँ तक,

आयो हो जब किसी प्रकार ।

ठहरो, थोड़ी देर और भी,

दर्शन कर लो अन्तिम बार ॥

स्वप्न—

(१)

एक दिवस रस-धार भूमि पर,

बरस चुके थे बादल।

कहीं नहीं थीं घोर घटाएँ,

नभोअङ्क था निर्मल॥

(२)

झिलमिल-ज्योति लिये तारा-गण,

पड़ते थे दिखलाई।

मानों हीरा-जटित-नील पट,

नभ में प्रकृति बिछाई॥

(३)

गंध-प्रदान वायु को करता

था, गुलाल रंगीला।

विहँस रही थी वसुधा पहने,

हरा वस्त्र चटकीला॥

(४)

तीव्र-वेग से बही जा रही

थी, मन्दाकिनि गंगा।

उठती थीं विस्तृत-सागर में,
लहरें अमित उतंगा ॥

(५)

मैं प्रियतम को खोज-खोज कर,
थकी हुई अलबेली ।
शिला-खंड पर लेट रही आ,
यमुना तीर अकेली ॥

(६)

विजन कूल था अर्द्ध-निशा में,
नीरवता थी छाई ।
केवल कानों में पड़ता था,
झिल्ली-शब्द सुनाई ॥

(७)

पड़ी-पड़ी यों सोच रही थी,
मन में बीती बातें ।
पूर्व-स्मृति थी कोमल मन पर,
करती भीषण घातें ॥

(८)

इस प्रकार थोड़े ही क्षण में,
निद्रा ने आ घेरा ।

लीन होगया स्वप्न देखने
में, दृगमंडल मेरा ॥

(९)

देखा दिव्य-लोक से भू पर,
नव-ऋतुपति है आता ।
अपनी नेत्र-रंजिनी शोभा,
सभी ओर फैलाता ॥

(१०)

प्रमुदित ग्वाल-बाल भरते हैं,
यमुना-तट किलकारी ।
कहीं गोपियाँ करती हैं
शुभ स्वागत की तैयारी ॥

(११)

कहीं खड़ी ब्रज की वनिताएँ,
मंगल-होली गातीं ।
कहीं बालिकाएँ फूलों के,
सुन्दर हार बनातीं ॥

(१२)

कहीं खेलते बालक होली,
भर-भर कर पिचकारी ।

मिलजुल राचा रहे आपस में,
रँग-रलियाँ मन-हारी ॥

(१३)

फिर देखा ब्रज ग्राम ओर का
लाल होगया बादल ।
मानों लहर फेंकता ऊपर,
जलता हो प्रबलानल ॥

(१४)

देख-देख कुछ चकित चाव से,
मुस्काता था दिनकर ।
चित्त मत्त होजाता था सुन,
वंशी-ध्वनि, श्रुति-सुख-कर ॥

(१५)

वेणु, बजाते, होली गाते,
रंग गुलाल उड़ाते ।
मन्द-मन्द मुस्काते मोहन,
पड़े दिखाई आते ॥

(१६)

ललित कुसुम-मणि-हार कंठ में,
मोर-मुकुट मस्तक पर ।

पीताम्बर था लसित मनोहर,
सुन्दर श्यामल तन पर ॥

(१७)

पकड़ पकड़ श्यामा के मुख में,
लगा रहे थे रोली ।
ग्वालिनियों पर रंग छोड़ते,
भींज गई थी चोली ॥

(१८)

सखियाँ सब जा कहतीं रोकर,
सुनो यशोदा माई ।
डगर रोक कर रंग लगावें,
तेरे कुवँर कन्हाई ॥

(१९)

पहुँचीं यमुना-तट पनिहारिन,
खड़ी देखतीं लीला ।
धारण किये अंग पर कपड़ा,
धानी, नीला, पीला ॥

(२०)

कान्हा लगे रंग की अपनी,
पिचकारी बरसाने ।

गोल कपोल मसलने सिर से,
तट पर घड़ा गिराने ॥

(२१)

लाल हो गया मिलकर रोलो,
कालिन्दी का निरमल नीर ।
प्रकृति-बधूटी-रुचिर-अधर पर
खिची अनोखी हँसी-लकीर ॥

(२२)

जिधर उठाकर आँखें देखा,
लाल लाल थीं शोभा ।
अहा ! दिव्य, लोचन-सुखकारी,
मन-मराल-मृदु-लोभा ॥

(२३)

मैंने सोचा आज होगया,
सफल जन्म जग-जीवन ।
इतने दिन की विरह-समस्या,
हुई आज हल, मोहन ॥

(२४)

चरण चूमने को दौड़ी पर,
विफल हुई सब आशा ।
पग के बदले मिली उमड़ती,
हुई अनन्त निराशा ॥

पूर्वस्मृति–

(१)

देखो! वर्षा बीत गई अब,
शिशिर सुहावन आया।
प्रकृति–नटी ने कुंज–पुंज में,
कास–कुसुम विकसाया॥

(२)

शर्वरीश की शरद्–चाँदनी,
भू पर उतर गगन से।
लगी खेलने जल थल से बन,
विटप–वेलि–उपवन से॥

(३)

विमल हो गया गगन चमकने,
लगे मनोहर तारे।
पहन सितारा–हार विलसने,
लगे चन्द्र छबि धारे॥

(४)

रजत-राशि या मौक्ति-माल-से,
प्रातःकाल तृणों पर–

बिछे हुए हैं मैदानों में,
हिमकण प्यारे सुन्दर ॥

(५)

देख शस्य-संकुल खेतों को,
अनुपम नव हरियाली ।
उठती कृषक-वृन्द-हृत्तल में,
हर्ष उमंग निराली ॥

(६)

खिली हुई हैं जलाशयों में,
कुमुद-कमल की कलियाँ ।
उन पर बैठी गुन-गुन करती
हैं मधु लोलुप अलियां ॥

(७)

लिये समेट नदी नद सारे,
अपने—अपने जल को ।
आलोकित कर रहा इन्दु,
यमुना के वक्षस्थल को ॥

(८)

विधु को देख रसिक-जन-मन में,
याद प्रिया की आती ।

शरद्-चन्द्रिका विरही-जन का,

व्याकुल हृदय बनाती ॥

(९)

चली शीत-वर्द्धक सुखदायक,

शीतल-वायु सुमन्दा ।

"यमुना" सोच रही अतीत को,

देख शरद का चन्दा ॥

(१०)

इसी शरद की रजत-कौमुदी

में, नट नागर मोहन ।

गोप-गोपियों संग रचे थे,

रास महा--मन--भावन ॥

(११)

कैसा था वह समय, रास में,

सहित--राधिका नटवर-

किये गोपियों बीच प्रेमयुत,

चंचल नृत्य मनोहर ॥

(१२)

उस शुभ अवसर पर सुधांशुने,

अपना भाग्य समझ कर-

माना था कृतार्थ अपने को,
स्वच्छ ज्योति फैलाकर ॥

(१३)

पूर्व-काल की याद दिलाती,
वही शरद्-ऋतु आई ।
किन्तु न मनको मोह रही है,
यमुना की सुघराई ॥

(१४)

कल-कदम्ब-तल बैठ गोपियाँ,
अब न गूंथती माला ।
उनके निकट न गुन-गुन करता,
रसिक मधुप मतवाला ॥

(१५)

अब तो कालिंदी के तट पर,
उड़ती धूल घनेरी ।
गोकुल-विपिन-बीच नित देते,
व्याघ्र, भालु, वृक फेरी ॥

(१६)

क्यों विचित्र परिवर्तन जग में,
हुआ आज यह ऐसा ।

ग्वाल-बाल ब्रज-वासी से क्यों,

हुआ विमुख प्रभु ऐसा ॥

(१७)

निज असंख्य-रसनासे कोमल,

वृक्ष-पत्र ये सारे—

बुला रहे हैं कहाँ-कहां हो?

आओ नन्द-दुलारे ॥

(१८)

मैं भी इन वृक्षों के नीचे,

बैठी सब सुनती हूँ।

उनका प्रेमाह्वान श्रवण कर,

अपना दुख भुलती हूं॥

(१९)

कभी मार्ग की ओर देखती,

मन में आशा भर कर।

"कहीं दूर से आते तो हैं,

नहीं हमारे प्रियवर" ?

(२०)

फिर-मनमें उस रात्रि-काल का,

स्मरण स्वप्न हो आता।

सोच, सत्य है या अलीक है,

चित व्याकुल हो जाता ॥

(२१)

सहो हृदय ! कुछ काल और,

यह शीत समय जाने दो ।

प्रज्वलित विरह-वह्नि बढ़ने दो,

नव-बसंत आने दो ॥

(२२)

निस्सन्देह वह स्वप्न कभी तो,

होगा सत्य हमारा ।

मुझ डूबी को कोई देगा,

निश्चय सबल सहारा ॥

सन्देशा—

(१)

हे पथिक, श्रान्त पथ के,

सुन लो व्यथा हमारी ।

दारुण विरह विकलता,

अतिशय हृदय-विदारी ॥

(२)

तेरे ललाट पर हैं,

ये स्वेद-विन्दु छाये ।

मुख सूख-सा रहा है,

बढ़ते न पग बढ़ाये ॥

(३)

तन-धूल-धूसरित है,

कपड़े मलीन सारे ।

बैठो विराम ले लो,

यमुना-नदी किनारे ॥

(४)

'आते' कहो, 'कहाँ से ?

'जाना कहां' बताओ ?

रात्री घिरी अँधेरी,

आगे कहीं न जाओ ॥

(५)

मैं आज देख तुमको,

फूली नहीं समाती ।

कुछ शान्ति पा रही है,

मेरी विदग्ध छाती ॥

(६)

इस ओर मे कभी थे,

आते पथिक न जाते ।

पथ पर बिछे हमारे,

दृग अश्रु थे बहाते ॥

(७)

तुम कौन हो दयाकर,

सुन मम पुकार आये ।

इस चिर-विकल हृदय में,

आशा ज़रा बँधाये ॥

(८)

मैं खोजती विरहिणी,
प्राणेश को विपिन में ।
आशा मधुर मिलन की,
धारे अधीर मन में ॥

(९)

कब तक कृपा न करते,
देखूं उदार मोहन ।
करती परम तपस्या,
त्यागूं असार जीवन ॥

(१०)

मोहन बिना बना है,
भारत विकल दुखारी ।
छाई नहीं कहीं भी,
नव-न्याय—नीति न्यारी ॥

(११)

नित दुष्ट-ताप सहते,
भारत—भवन निवासी ।
मुख से झलक रही है,
सब के अतुल उदासी ॥

(१२)

पथ में, सुनो पथिक ! यदि,

घनश्याम दें दिखाई ।

कहना दशा बुझाकर,

खलती बड़ी जुदाई ॥

(१३)

मेरी न सुध करेंगे,

मैं शीघ्र मर मिटूंगी ।

चाहे मिले न दर्शन,

पथ से न पर हटूंगी ॥

दर्शन–

(१)

छिटक रही है छटा छबीली,
वन–उपवन में चारों ओर ।
हर्ष–युक्त पक्षी–गण करते,
कानन में कलरव चित-चोर ॥

(२)

फूल रहे हैं फूल फबीले,
होता सौरभ का संचार ।
मधु–पराग–प्रेमी भौंरे सब,
फैलाते गुन–गुन गुंजार ॥

(३)

शीतल मन्द पवन को करती,
ललित मालती सुरभि प्रदान ।
बैठ तमाल–रसाल वृक्ष पर,
पक्षी गाते मीठा गान ॥

(४)

लता विटप उद्यान कुंज में,
झलक रहा सौन्दर्य-विलास ।

शिशु-गण सुमन-चयन करलाते,
करते मोद-विनोद प्रकाश ॥

(५)

लदा रसाल मंजरी से है,
उस पर करते भृंग विहार।
मँडलाते रस चूस-चूस कर,
करते मधुर-मधुर गुंजार ॥

(६)

मस्त मंजरी-गन्ध पपीहा,
करता पी की मधुर पुकार ।
सुन वियोगिनी के अन्तर में,
उठती विरह व्यथा की ज्वार ।

(७)

मन्द्-मन्द् मलयानिल बहता,
पुलकित होता सकल शरीर ।
लतिकाएं लहलहा रही हैं,
पत्र-हीन होगया करीर ॥

(८)

श्याम-शस्य-संकुल खेतों की,
अद्भुत है छवि छटा महान ।

चरवाहे आनन्द-मग्न हो,
छेड़ रहे हैं मीठी तान ॥

(९)

कोकिल की मृदु मधुर कूक से,
कूजित सा हो उठा दिगन्त ।
लेकर अनुपम छटा छबीली,
आया जग में सरस वसन्त ॥

(१०)

सभी मग्न हैं देख प्रकृति की,
नेत्र-रञ्जिनी छटा अपार ।
अहा ! धन्य है अद्भुत तेरी,
परम रम्य रचना कर्तार ॥

(११)

किस अजान अज्ञात ठौर से,
यह वंशी-ध्वनि आती है ।
मेरे कर्ण-कुहर में शीतल,
सुधा-धार बरसाती है ॥

(१२)

किस तटिनी के तीर श्याम सँग,
श्यामा नर्तन करती है ।

गुञ्जारित करती कानन को,
मधुर पैजनी बजती है ॥

(१३)

किस निकुंज में रसिक मनुज-गण,
प्रमुदित ढोल बजाते हैं ?
निरख छटा निरुपम ऋतुपति की,
सुख से होली गाते हैं ॥

(१४)

किधर गोपियाँ वनमाली को,
पकड़ गुलाल लगाती हैं ?
देख भागतीं उन्हें सभी मिल,
"पकड़ो" शोर मचाती हैं ॥

(१५)

कँह कोलाहल मचा हुआ है,
किसे देख शशि हँसता है ।
हर्षित हैं सब प्राणी, पर मम
हृदय-अधीर तरसता है ॥

(१६)

नव उमंग से किस मंडल में,
होती हंसी ठठोली है ?

समझ गई, हिय-हुलसावनि,
सुखदायी आई होली है ॥

(१७)

ऐसे अवसर पर भी प्रियतम,
मुझको याद न करते हैं।
करुणा-कोर घुमा कर अपनी,
मानस-व्यथा न हरते हैं ॥

(१८)

होती इच्छा, साथ किसी के,
मैं खेलूं खुलकर होली।
इसीलिये तो नयन-नीर में,
केसर-रोली है घोली ॥

(१९)

पाऊं यदि प्रियतम को तो मैं,
नयन बनाऊं पिचकारी।
भर कर प्रेम-रंग बरसाऊं,
युगल-चरण पर सुखकारी ॥

(२०)

बहुत सह चुकी अब तो मुझसे,
हाय न नेकु सहा जाता।
यमुने माता ! मुझे शरण दे,
हृदय विदीर्ण हुआ जाता ॥

(२१)

परम अलौकिक शोभा कैसी,

फैल रही है वह—उस ओर।

जैसे द्रुत-गति से आते हैं,

राधा-रमण कृष्ण चित-चोर॥

(२२)

हाँ! सचमुच हैं वही, उन्हीं की,

मधुर बांसुरी बजती है।

आओ, हे जीवन-धन! तुमको,

यह हृत्तंत्री भजती है॥

(२३)

आये!—आज अभागी की,

मुरझाई आशा-कली खिली।

हृदय-तृप्त हो गया, धन्य विधि!

निर्म्मल दर्शन-सुधा मिली॥

(२४)

कैसी रूप-राशि है न्यारी,

मन-विमुग्ध हो जाता है।

निर्निमेष नयनों से देखूं,

भाव हृदय में आता है॥

(२५)

आये हो इतने दिन में प्रभु,
　　करती हूँ जो करने दो।
पकड़ो मेरा हाथ न, पैरों
　　पर अपना सिर धरने दो॥

(२६)

चिर-कालों का संचित आँसू-
　　मोती भेंट चढ़ाने दो।
कम्बु-कंठ में युगल करों से,
　　हृदय-हार पहनाने दो॥

(२७)

अब तक किसके प्रेम-पाश में,
　　फंसे हुये थे तुम प्यारे।
या फिरते थे मुझे ढूंढते,
　　गली-गली मारे-मारे॥

(२८)

मुझको तो विश्वास हुआ था,
　　भूल गये तुम भारत को।
मुझको अपने भक्त-जनों को,
　　और अनेकों आरत को॥

(२९)

पर निज दर्शन देकर तुम ने,
तो मेरा उपकार किया।
परम शान्ति पागया हमारा,
चिर-वियोग-दुख-दलित हिया॥

(३०)

होली का त्योहार आज है,
आओ अब मिल लेने दो।
रंग लगाने दो गाने दो,
उत्सव मुदित मनाने दो॥

(३१)

आओ, हृदय-बीच छिप जाओ,
खुला हुआ है नयन कपाट।
रहो अन्त तक साथ हमारे,
मेरे हृदय--देश--सम्राट॥

(३२)

रूप-चन्द्र की ज्योति-राशि से,
दीपित करदो अन्तर्धाम।
पुण्य प्रेम-पियूष पिलादो,
आओ, स्वागत ललित ललाम॥

इति.

ॐ

"श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली" की

सर्वप्रिय, और भारत-विख्यात

* रामायण *

(ले०-कविरत्न पं० राधेश्याम कथावाचक)

इस रामायण की कथा आज सैकड़ों कथावाचक बांच रहे हैं। यह कथा कितनी उत्तम है, इसका अनुमान केवल एक इसी बात से हो सकता है, कि आज तक कोई बीस लाख के क़रीब इसकी पुस्तकें भारत में पहुंच चुकी हैं। यह रामायण की पुस्तकें बीस हैं, अर्थात् २० भागों में रामायण पूरी हुई है। अभी एक जिल्द में यह बीसों भाग नहीं छापे गए हैं। आप बीसों भाग मंगवाकर जिल्द बंधवा लीजिए। नाम और दाम बीसों भागों के इस प्रकार हैं:-